भारत को सामाजिक न्याय चाहिए

हाल ही में विश्व ने कार्ल मार्क्स का 201वां जन्मदिन मनाया है। कार्ल मार्क्स उन दार्शनिकों में नहीं थे, जो अलग-अलग नजरिए से दुनिया की व्याख्या करते रहे। बल्कि वे तो संसार को बदलना चाहते थे। मार्क्स और एंजेल्स ने ही संसार को वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धांत दिया। उन्होंने मानव समाज और मानव चेतना के अध्ययन में द्वंद्ववाद को जोड़ा। उन्होंने मानवता को भेदभाव और शोषण से मुक्त करने के सभी प्रयास किये। श्रमिक वर्ग की समस्याओं को व्यक्त करने के लिए संसद जैसे मंच की जरूरत पर बल दिया था। इसी का परिणाम है कि आज के दैनिक जीवन में भी मार्क्सवाद की एक विज्ञान, एक विचारधारा और एक कार्यप्रणाली के रूप में प्रासंगिकता है।

वर्तमान के चुनावी दौर में अनेक वामपंथी दल भारत के सभी लोगों को एक गरिमापूर्ण और सशक्त जीवन देने और भारतीय गणतंत्र की रक्षा को लेकर अनेक राजनैतिक और वैचारिक प्रश्न उठाते दिखे। परन्तु दुख की बात यह है कि यह सजगता, भारत में वानपंथियों के भविष्य को लेकर ही दिखाई देती रही। साम्यवादी विचारधारा पर की जाने वाली चर्चा में कुछ लोगों ने तो यहां तक कह दिया कि इसकी समाप्ति हो चुकी है, और वाम-पक्ष की राजनतिक शक्ति भी खत्म हो गई है।

पूँजीवाद की यात्रा

सोवियत यूनियन के विखण्डन के पश्चात् लोगों को लगने लगा था कि नवउदारवाद का अब कोई विकल्प नहीं बचा है। तब से लेकर अब तक 2008 की आर्थिक मंदी के साथ ही नवउदार पूंजीवाद की विजय यात्रा ने अनेक बाधाएं पार की हैं। इस यात्रा में आने वाले संघर्षों की सबसे अधिक मार वंचित वर्ग पर ही पड़ी है। इससे ही समाज के वर्ग-संघर्ष का पता चलता है। वंचित वर्ग के जीवन में आने वाली समस्याओं का मुख्य और स्पष्ट कारण पूंजीवाद का उदय है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थामस पिकेटी ने तो नवउदारवाद को समाज में जन्मी असमानता और विसंगतियों का कारण माना है।

भारतीय संदर्भ में अर्थव्यवस्था का उदारीकरण इस आधार पर किया गया कि समाजवादी और केन्द्रित अर्थव्यवस्था की सार्थकता समाप्त हो गई है, और अब निजी स्वामित्व और बाजार की शक्ति से सार्वजनिक उपक्रमों और साधनों को नया जीवन प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार की व्यवस्था विश्व के अन्य देशों में भी लागू की गई। इसका परिणाम केवल यही हुआ कि धन का केन्द्रीकरण एक हाथ से निकलकर दूसरे हाथ में चला गया। इससे पूंजी केवल कुछ लोगों तक सीमित होती गई। भारत में याराना पूँजीवाद पाँव पसारने लगा। निजी क्षेत्र को मिली इस शक्ति के परिणाम भी सामने आए। परन्तु किसके लिए ? स्पष्टतः साधारण जन के लिए नहीं आए। हाल ही के एक अध्ययन में इस तथ्य को उजागर किया गया है कि पूरे विश्व में भारतीय समाज असमानता में दूसरे नंबर पर है। क्रेडिट सूसी रिसर्च इंस्टीट्यूट की विश्व रिपोर्ट के अनुसार 1% भारतीयों के पास 51.5% पूँजी है। इनमें से भी ऊपरी दस फीसदी के पास 3/4 धन है। दूसरी ओर, अधिकांश जनसंख्या के पास कुल 4.7% धन है।

पूँजीवाद का सबसे बुरा प्रभाव सार्वजनिक शिक्षा और स्वास्थ्य पर पड़ता है। शिक्षा पर किए जाने वाले सरकारी खर्च में 2014-15 के 6.15% के मुकाबले 2017-18 में 3.17% की गिरावट देखने को मिली। उच्च शिक्षा को दूर-दूर एवं वंचित तबकों तक फैलाने की जगह, केन्द्र सरकार इसे उच्च शिक्षा से जुड़ी वित्तीय एजेंसी के माध्यम से निजी क्षेत्र का प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न कर रही है। ऐसा होने पर यह वंचित तबकों के लिए कभी न पूरा हो सकने वाला सपना हो जाएगी। स्वास्थ्य क्षेत्र में भी सरकार ने निजी बीमा कंपनियों और निजी स्वास्थ्य केन्द्रों को सहयोगी बना लिया है। सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे को सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है।

भारत जैसे देश में; जहाँ गरीबी, कृषि संकट, उच्च बेरोजगारी दर और स्वास्थ्य सुविधाओं का बुरा हाल है, वहाँ पर सार्वजनिक साधनों को निजी क्षेत्र को सौंपकर समाजवाद से दूरी बना लेना अधिकांश जनता के लिए प्राणघातक सिद्ध हो सकता है।

शब्दाडंबर का जाल

इस चुनावी मौसम में, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा की बेवजह अपीलों के कारण लोगों से जुड़े असली मुद्दों पर पर्दा डाल दिया गया है। पिछले पाँच वर्षों के शासन ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव विकास सूचकांक में भारत का स्थान ऊपर उठाने के लिए 'ईज ऑफ डुईंग बिजनेस' में ऊपर उठना जरूरी है। पोषण, शांति, मानव विकास और प्रेस की स्वतंत्रता जैसे मामलों में भारत का प्रदर्शन बहुत खराब चल रहा है। मीडिया का एक वर्ग 'ईज़ ऑफ डुईंग बिनेस' में भारत की उपलब्धि का जश्न मना रहा है। दूसरे शब्दों में, लोगों को एक साफ-सुथरा, सम्मानित जीवन प्रदान करना गौण है। व्यवसाय में सरलता लाकर याराना पूँजीवादियों को खुश करना प्रमुख ध्येय है।

सत्तासीन दल की राष्ट्रवाद की अपील और फौज के बलिदानों का वोट लेने के लिए किया जाने वाला प्रयास, युवाओं को रोजगार प्रदान करने, किसानों को फसल की सही कीमत देने, हाशिए पर जीवन बिताने वालों को सामाजिक न्याय दिलाने और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए वातावरण तैयार कर पाने में उसकी असफलता को दर्शाता है। सरकार ने संवैधानिक संस्थाओं की जड़ों को खोखला करते हुए धीरे-धीरे उन्हें अपने आधिपत्य में ले लिया है। राष्ट्रीय सम्पत्ति को

निजी हाथों में सौंप दिया गया है, और अल्पसंख्यकों के प्रति होने वाली हिंसा को बढ़ावा दिया गया है। वह विपक्षी दल की नीतियों को राष्ट्र-विरोधी कहकर उसे ठुकराती रहती है। ये सभी गतिविधियाँ किसी गंभीर समस्या के लक्षण जैसी हैं। इन सबको निष्पक्ष तौर पर देखने के लिए हमें टी वी पर चल रही सनसनीखेज वार्ताओं के शोर से बाहर आना होगा। जैसा कि नोआम चॉपस्की ने लिखा है कि "डेली प्रेस द्वारा उद्घाटित तथ्यों में बहकर इस बात को नजरअंदाज कर देना आसान है कि यह महज किसी गंभीर अपराध का बाह्य आवरण, मूलभूत मानव अधिकारों से विमुख करने वाली एवं अंतहीन पीड़ा और तिरस्कार की गारंटी लेने वाली सामाजिक व्यवस्था के प्रति वचनबद्धता है।"

राष्ट्रीय हितों को वैश्विक पूँजी से जोड़कर न केवल विपरीत बल्कि जीविका छिन जाने के खतरे पैदा कर दिए गए हैं। इस कारण से भारतीय विदेश नीति को नैतिक पायदान पर पीछे धकेल दिया गया है। इस 'सत्य से परे' संसार में, जहाँ वाक्पटुता ने वास्तविक मुद्दों को हटा दिया है, गहन समाजवाद ही एकमात्र विकल्प है।

द कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो में मार्क्स और एंजेल्स लिखते हैं-"अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है, जहाँ अत्याचारी और पीड़ित आमने-सामने लगातार खड़े हुए एक निर्बाध, कभी गुप्त और कभी खुले युद्ध में रत रहते हैं।" समाजवाद का यह दायित्व है कि वह मानवता के लिए संघर्ष करते हुए राजनीति को वापस 'लोगों को' सौंप दे। इस नृशंस पूँजीवाद को 'न' कहकर और संविधान की प्रस्तावना के सामाजिक न्याय का पालन करके क्या हम वर्तमान में चलने वाली समस्याओं का हल ढूंढ सकते हैं ?

'द हिन्दू' में प्रकाशित डी. राजा के लेख पर आधारित। 6 मई, 2019